पंचम अध्याय

“नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन : धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ”

पंचम अध्याय

“नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन - धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ”

5.1 प्रस्तावना।

5.2 धार्मिक पक्ष -

5.2.1 भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म का महत्त्व।

5.2.2 नागार्जुन के उपन्यासों में धार्मिक पक्ष -

5.2.2.1 अंधविश्वास।

5.2.2.2 रूढ़ि, प्रथा - परम्परा।

5.2.2.3 मनौतियाँ।

5.2.2.4 पूजा-अर्चा।

5.2.2.5 मंत्र-तंत्र।

5.2.2.6 व्रत-उपन्यास।

5.2.2.7 मृतक संस्कार आदि का महत्त्व।

5.3 सांस्कृतिक पक्ष -

5.3.1 भारतीय समाज व्यवस्था में संस्कृति का महत्त्व।

5.3.2 नागार्जुन के उपन्यासों में सांस्कृतिक पक्ष -

5.3.2.1 रीति-रिवाज।

5.3.2.2 तीज-त्यौहार।

5.3.2.3 मेले

5.3.2.4 खेल-कुद।

5.3.2.5 लोकगीत आदि का महत्त्व।

5.4 नागार्जुन के उपन्यासों में धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता

निष्कर्ष -

पंचम अध्याय

''नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्राम जीवन - धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ''

5.1 प्रस्तावना :-

इस अध्याय में धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भों का अध्ययन करना हमारा प्रमुख उद्देश्य है। भारतीय समाज व्यवस्था को सुचारू रूप देने में कार्य आथ संस्कृति का स्थान महत्त्वपूर्ण रहा है। धर्म की संकल्पना प्राचीन है। भारत धर्म परायण देश है। तो हमारा इस संदर्भ में कर्तव्य बन जाता हैं कि 'धर्म' का अर्थ क्या है ? यह जानना ! व्यापक दृष्टी से देखा जाए तो, वह नियम जो मानव के हृदय तथा मन में विद्यामान है। वास्तव में धर्म श्रद्धा का विषय है। प्राचीन काल में हिन्दू धर्म सामाजिक संगठन तथा दैनिक जीवन का निर्देशन करता था जिसके कारणस्वरूप समाज में जड़ता आ गई। समाज के विकास में बाधाएँ आने लगी। आगे चलकर राजनीतिक तथा सामाजिक क्षेत्र में विकास होने के कारण 'धर्म' को सामाजिकता की कसौटी पर कसा जाने लगा। जिससे अपने धर्म की परम्परा और विश्वासों के त्याग के साथ पाश्चात्य विचारों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाने लगा और पुराने संस्कार भी नये और परिमार्जित रूप में प्रस्तुत होने लगे।

भारतीय समाज व्यवस्था धर्माधिष्ठीत, वर्णाश्रीत है। धर्म उसका प्राण तत्व है। चार्तुवर्ण माननेवाली यह व्यवस्था ने कई तूफानों का, धार्मिक आक्रमणों का सामना किया, परंतु आज तक मजबूती से टिकी है। पाश्चात्य सभ्यता, संस्कृति, विदेशियों का प्रभाव होने पर भी आज भी 'धर्म' का स्थान महत्त्वपूर्ण है। समाज का हर एक व्यक्ति इससे प्रभावित है। समाज की नींव धर्म बना है। परिणामत: उसे त्यागना 'पाप' माना गया है। इसी कारण सभी इसे अपनाते है। साहित्य में भी इसका दर्शन होता है। अब धर्म की संकल्पना विस्तृत हो रही है। विश्व कुटुंब', 'मानवता यही धर्म' माना है परंतु प्राचीन परंपरागत 'धर्म' का प्रभाव है ही।

धर्म की परिभाषाएँ :-

''धर्म के व्यापक स्वरूप को देखते हुए हमें उसे परिभाषित करना कठीण कर्म है। फिर भी अध्ययन के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ देखना जरूरी है। धर्म शब्द संस्कृत के 'धृ' से व्युत्पन्न हुआ है। जिसका अर्थ धारण करना। धर्म की शाब्दिक व्याख्या है - ''ध्रियतेन सधर्म'' अत: धर्म का अर्थ हुआ समाजधारणा तथा समाज सातत्य के लिए आवश्यक नीति-नियमों के प्रति

निष्ठा।'' 'आदर्श हिन्दी शब्द-कोश' में धर्म का अर्थ - ''सुसंस्कृत, सत्कर्म, पुण्य, सदाचार, वह आचरण जिससे समाज की रक्षा और कल्याण हो, सुख-शान्ति की वृद्धी हो और परलोक में सद्गति प्राप्त हो, कर्तव्य मन की वृत्ति इंद्रियों का कार्य पदार्थ का गुण, विशेषता आदि।''[1]

डॉ. शील प्रभावर्मा के मतानुसार, ''आत्मा से आत्मा को देखना, आत्मा से आत्मा को जानना और आत्मा से आत्मा में स्थित होना धर्म है।''[2]

डॉ. ज्ञानचंद गुप्त का कथन है - ''सांस्कृतिक मान्यता प्राप्त विभिन्न पवित्र विश्वास ही धर्म है, जो मानव समाज को अपनी पूर्व पीढ़ियों से सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होते हैं। इसी के आधार पर अपने जीवनक्रम को निर्धारित करते हैं, आकस्मिक आपदाओं का सहन करने का संबंल भी।''[3]

लक्ष्मशास्त्री जोशी कहते है - ''इष्ट की प्राप्ति के लिए और अनिष्ठ के लिए अलौकिक शक्ति की की गयी साधना या प्रार्थना ही 'धर्म' कहलाती है।''[4]

स्पष्ट है धर्म वह संकल्पना है जों इन अनिष्ट, पाप-पुण्य, अच्छा-बुरा का निर्णय देती है। मानवी मन का दूसरों से संबंध है, जो पीढ़ी दर पीढ़ी को विरासत के रूप में प्राप्त होता है। विज्ञान का कितना भी प्रभाव बढ़े साथ ही साथ धर्म का अस्तित्व, उसका महत्त्व रहा है, ऐसा लगता है।

धर्म का स्वरूप :-

'धर्म' शब्द का अर्थ व्यापक है। धर्म वह उपकरण है, जो मनुष्य और पशु में भेद करता है। धर्म के अभाव में मनुष्य पशु ही है। आत्मा का स्वभाव तथा वस्तु का स्वभाव 'धर्म' है। धर्म समस्त विश्व का अधार, सुख एवं शांति का एक मात्र उपाय है। यह एक अविनाशी तत्त्व है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थिति के कारण धर्म का स्वरूप भी बदलता है। वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, कुल धर्म, देश धर्म, स्वधर्म आदि धर्म के अनेक रूप है। राजा राममोहन रॉय, म. ज्योतिबा फुले, विवेकानन्द जैसे विचारकों के कारण हिन्दू धर्म का स्वरूप बहुत ही बदल गया है। रामकृष्ण परमहंस इस संदर्भ में लिखते है, ''सब धर्म समान है, और सभी एक ही लक्ष्य पर ले जाते हैं। अत: धर्म-धर्म के बीच में दीवार, संघर्ष, एक धर्म के मानने वालों के द्वारा दूसरे धर्म पर किचड उछलाना, ये सब बातें अर्थहिन है। उनसे अपने धर्म की रक्षा नहीं होती अपितु उसका पतन होता है।''[5] अत: भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म को महत्त्वपूर्ण माना है। ग्रामीण लोगों के अज्ञान और धर्मांधता के कारण देवी-देवताओं का निर्माण हुआ हैं। ग्रामों में वास करनेवाले लोग धार्मिकता से परम्परागत और

प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार देवी-देवताओं की पूजा करते है। परिणामत: धार्मिक आडम्बरों का प्रभाव बड़ा तो समाजसुधारकों ने इसका विरोध किया। धार्मिक-सामाजिक आंदोलन के कारण सही उदात्त धर्म की स्थापना हो गई है ऐसा कहना अनुचित नहीं लगता।

5.2 धार्मिक पक्ष :-

भारतीय समाज व्यवस्था में धार्मिक पक्ष का अनन्य साधारण महत्त्व है। भारतीय समाज व्यवस्था में श्रद्धा, कल्पना, विश्वास, मान्यता आदि तत्व धार्मिक पक्ष में आते है। ग्रामीण लोगों में पाए गए धार्मिक अंधविश्वास एवं रूढ़ियों का उनके जीवन पर गहरा असर होता है। भक्ति, श्रद्धा, पूजा-आराधना, चिंतन, सेवा, प्रेम आदि अनेक रूपों में धर्म की संकल्पना दिखाई देती है। धर्म का संबंध अदभूत ताकत या भगवान से जोडा है। देवी-देवता, पूजा, ग्रंथ पठन, आदि का प्रभाव इसमें रहा है। भविष्य का डर, पुण्य की प्राप्ति, पाप से मुक्ति यही लक्ष्य मानकर इसे निभाया जाता है। दान देना, बलि देना जैसी प्रवृत्तियों के भी यहाँ दर्शन होते है। हर एक व्यक्ति इसका चुपचाप निर्वहन करता है। इसी कारण जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात भी इसका महत्त्व रहा है। इसके कारण कई संस्कार किए जाते है। अत: भारतीय समाज के धार्मिक पक्ष एक अनिवार्य अंग बना है। सामाजिकता के साथ-साथ अब राजनीति में भी इसकी अहम् भूमिका बनी है। धर्म मजहब को लेकर चुनाव लड़ना, वोट मांगना, आरक्षण देना आदि इसके प्रभाव है। लगता है आज विज्ञान का जितना महत्त्व है उसी तरह धर्म का समाज जीवन में प्रभाव है।

5.2.1 भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म का महत्त्व :-

भारतीय समाज व्यवस्था में व्यक्तियों को तथा उनके जीवन को संचलित करनेवाले तत्त्वों के अंतर्गत 'धर्म' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित निम्नवर्ग बिहार के मिथिला जन-पदों में रहनेवाला है और अपनी जीविका खेती, मजदूरी तथा छोटे-छोटे व्यवसायों से चलता है। अत: वह प्रकृति पर निर्भर है। इसलिए इसका धर्म पर अवलंबित होना स्वाभाविक है। डॉ. राधाकृष्णन इस संदर्भ में कहते हैं - ''धर्म सम्पूर्ण जीवन की पद्धति है। वह नश्वर में अन्ववर तथा अचिर में चिर का अनुसंधान है। धर्म जीवन का स्वभाव है।''[6] अत: भारतीय जनजीवन का मूलाधार धर्म है। समाज में प्रचलित उत्सव, पर्व, त्यौहार, मेले आदि पर धर्म का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव दिखाई देता है। भारतीय जीवन के सभी प्रमुख कर्तव्य और संस्कार, धर्म पर ही आधारित है। सामाजिक जीवन के साथ भी धर्म का गहरा संबंध है। धर्म व्यक्ति के जन्म से लेकर

मृत्यु तक व्यक्ति के जीवन में रहता है। धर्म के महत्त्व के बारे में डॉ. सुभद्रा पैठणकर कहती है, ''भारतभूमि धर्म भूमि मानी गयी है। इसलिए धर्म की जड़े यहाँ गहरी हैं, और धर्म का वृक्ष अपनी शाखाओं, उपशाखाओं के साथ अपने अस्तित्व को प्रमागित कर रहा है। भारत में फैले विभिन्न धर्म उसके साक्षी है।''[7] अंत में हम कह सकते है कि भारतीय समाज व्यवस्था और धर्म का संबंध चोली-दामन का रहा है ऐसा कहा तो अनुचित न होगा ऐसा मुझे लगता है।

5.5.2 नागार्जुन के उपन्यासों में धार्मिक पक्ष :-

5.2.2.1 अंधविश्वास :-

भारतीय समाज व्यवस्था के अंतर्गत धर्म व्यवस्था में अंधविश्वास का बोलबाला है। भारतीय अपने सुख-दु:ख का निर्माता ईश्वर को मानते हैं। दर्शन शास्त्र के विद्वान इसे 'ईश्वरवाद' मानते है तो वैज्ञानिक इसे 'अंधविश्वास' मानते है। देहाती जन-जीवन में शकुन, अपशकुन की धारणा को मानना, देवता का शरीर में संचार होना, मंत्र-तंत्र, पूजा-पाठ में विश्वास रखना, बलि चढ़ाना, पिंडदान के लिए पुत्र का केशवफन करना आदि अंधविश्वासों का नागार्जुन ने अपने साहित्य में यथार्थता से लिया है। भारतीय ग्रामों के लोग अज्ञानी, अशिक्षित और धार्मिक होने से वे परम्परागत रूढ़ियों, मान्यताओं का पालन एवं रक्षण करते है इसलिए उनमें अंधश्रद्धा निर्माण हुई है। इस संदर्भ में डॉ. विरेंद्र सिंह कहते है - ''अंधविश्वासों का उद्गम मानव मन का एक अभिधान है इसका कारण है कि आदिमानवीय विकास स्थिति में अंधविश्वास एक ऐसी दशा की ओर संकेत करते है, जब मानव नामधारी प्राणी की मानसिक शक्ति, प्रवृत्ति तथा विश्व के प्रति एक जिज्ञासा, कौतुहल तथा भय की मिली-जुली मनोवृत्ति का परिचय देती है।''[8]

अंधविश्वास शब्द में विश्वास, श्रद्धा है मगर अंध है। जिसमें विचार, सोचना, बुद्धी का प्रभाव नहीं। ऐसी श्रद्धा हानिकारक होती है। समाजहित के लिए विज्ञाननिष्ठ श्रद्धा का होना अनिवार्य है परंतु धार्मिकता में वैज्ञानिकता नहीं होती। परिगामत: उसे सामाजिक श्रद्धा, अंधश्रद्धा बनी है। अब पढ़ा-लिखा व्यक्ति इससे दूर जा रहा है परंतु ग्रामीण समाज में आज भी इसका प्रभाव है। नागार्जुन ने इस पर सोचा है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में नागार्जुन ने अंधविश्वास के बारे में विचार किया है। जयनाथ और रतिनाथ का संवाद इसका प्रमाण है। देखिए '' और हाँ 'विद्यारंभे गुरू श्रेष्ठ' मतलब यह की विद्या का आरंभ बृहस्पतिवार को करना अच्छा है, आज कौनसा दिन है ? शनिचर रत्ती

बोला।''[9] यहाँ पर विद्यार्जन करने के लिए कौन-सा दिन ठिक रहेगा इसमें अंधविश्वास की भावना मिलती है। जयनाथ का ताराबाबा पर विश्वास रखना, ताराबाबा के कहने पर गर्भ गिराने का यंत्र तैयार करना, ताराबाबा का मरी हुई गाय को जीवित करना आदि अंधविश्वास है।

'बलचनमा' (1952) में अंधविश्वास के सम्बन्ध में बलचनमा का कथन है, ''पहले दिन सुबह-सुबह भैंस खोलकर जब में चराने के चला तो अभी काफी सबेरा था। मुझे लगा। दादी के मुँह से भूत-प्रेत की कहानियाँ सुनी थी। गाँव के बाहर का हर बुढ़ा पीपल या बरगद मेरे लिए भूतों का रैनबसेरा था।''[10] यहा पर बलचनमा का बूढ़े पीपल या बरगद के पेड पर भूतों का बसेरा है यह समझना एक अंधविश्वास ही है।

बचपन में सुनी सुनाओी कहानियों का प्रभाव युवाओं के मन पर होना उनकी कमजोर मानसिकता का प्रमाण है। लगता है भूत-प्रेत, चुडैल-डायन संबंधी प्रचलित कहानियों का प्रभाव आज भी है। बलचनमा इसका उदाहरण है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुन ने एक बटवृक्ष के मध्यम से ग्रामजीवन पर प्रकाश डाला है। बटवृक्ष अंधविश्वास के संदर्भ में कहता है -''जहाँ कही भूत-प्रेत का उपद्रव उठ खडा होता, जहाँ कही देव-देवी उत्पात मचाते, जहाँ कहीं ब्रहम कर्ण पिशाची, चुडैल आदि की खुराफाते उथरती, वहाँ औघड़ बाबा की गुहार होती। उस सिद्ध डोम ने पहुँचते ही आधी गडबडी दुरूस्त हो जाती, जटाधारी औघड जोरों से चिमटा पकडकर जब 'ओ ऽऽऽऽ अलऽख निरंजन भगू सा ऽऽऽऽ ले ऽऽऽऽ ! की उँची आवाज मारता तो बाकी खुराफाते भी खतम हो जाती।''[11]

लगता है बाबा, मांत्रिक, धर्मगुरू का संबंध रहा है।वे लोग अपने लाभ के लिए इसे बढ़ावा भी देते है। विज्ञान, तर्क का अभाव, हिंसा का प्रभाव हम में रहा है। अघोरी, अमानवीय हरकते यहाँ होती हैं, परंतु सभी चुपचाप उसे सहते है यही अंधश्रद्धा है।

अत: हम कह सकते हैं कि अज्ञान, अशिक्षा के कारण ग्रामों में रहनेवाले लोग अंधविश्वास की जंजीरों में जकडे हुए है। वे भूत-प्रेतों से डरते है। सुनी-सुनाई मनगढ़ंत बातों पर विश्वास करते हैं। भूत उतारने के लिए मांत्रिकों के पास जाकर अपना समय और बहुत सारा पैसा खर्च करते हैं। जब तक विज्ञान का ज्ञान, तंत्रज्ञान का प्रसार नहीं होगा तब तक अंधश्रद्धा अपना बेड़ा स्थिर रखेगी। अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति, समाज प्रबोधन करनेवाले संस्था - व्यक्ति के कार्य के परिणामस्वरूप यह संभव है। आलोच्य उपन्यासों में इसके खिलाफ आवाज उठानेवाले पात्र नहीं, तो स्पष्ट है, सभी ग्रामवासी अंधश्रद्धा को मानते है।

5.2.2.2 रूढ़ि-प्रथा-परम्परा :-

भारतीय ग्रामीण समाज व्यवस्था में रूढ़ि-प्रथा एवं परंपरा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। भारतीय समाज रूढि एवं परम्पराओं के जंजीरों से जकडा हुआ है। लोकरीतियों से ही रूढ़ि का निर्माण होता है। जब कोई लोकरिति बहुत अधिक व्यवहार में आने के कारण आवश्यक समझ ली जाती है तो वह रूढि का रूप धारण कर लेती है। इस संदर्भ में डॉ. यादव कहते है, ''सामाजिक रूढियाँ तो एक हद तक सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ लुप्त हो जाती है लेकिन धार्मिक रूढियाँ बहुत दिन तक रहती है, क्योंकि धार्मिकता के संस्कार मानव जीवन में अपेक्षाकृत अधिक गहरे और श्रध्दाभारित हो है।''[12] विलियम ग्राहम समगर कहते है, ''लोकरीतियाँ प्राकृतिक शक्तियों की उत्पत्ति सदृश होती है, जिन्हें मनुष्य अचेतनावस्था में प्रारंभ करते है अथवा वे पशुओं की नैसर्गिक अवस्थाओ सदृश होती हैं, जो अनुभव से विकसित होती है, जो किसी स्वार्थ के लिए अधिकतम अनुकूल के अंतिम स्वरूप तक पहुँचती है, जो परम्परा से चली आती है और किसी भी अपवाद या भिन्नता को स्वीकार नहीं करती तथापि नयी परिस्थितियों को अनुकूलन करने के लिए बदलती है, परंतु तब भी उन्हें सीमित पद्धतियों के अंदर ही परिवर्तीत होती है और विवेकपर्णू मनन या उद्देश्य से रहित होती है।''[13]

जब परम्परा अपरिवर्तित नियम बनती है तब वह समाज के लिए शोषक बनती है। रूढि, प्रथा, परम्परा का पालन सोच समझकर नहीं होता बल्कि हस्तांतरण के रूप में होता है। इस बारें में वर्मा का कथन है, ''प्रथाएँ तथा परम्पराएँ समूह द्वारा स्वीकृत नियंत्रण की वे पद्धतियाँ है, जो व्यवस्थित हो जाती है, जिन्हें बिना सोचे विचारे मान्यता दी जाती है और जो एक पीढ़ी से दूसरी को हस्तांतरित होती रहती है।''[14] अत: यहाँ स्पष्ट हैं कि रूढ़ियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रहती है। एक महत्वपूर्ण बात हैं कि, रूढि और परम्परा से गाँव में एकता रहती है। गाँव का समूह जीवन बनाए रहता है। अत: इनका जिन्दा रहना ग्रामों के लिए आवश्यक है ऐसा कहा तो अनुचित न होगा। लेकिन आज आधुनिक काल में शिक्षा प्रसार तथा नागरीकरण के प्रभाव के कारण रूढ़ियाँ, प्रथा-परम्पराओं में शिथिलता आ रही है ऐसा हम देख रहे है। लोगों का इन पर का विश्वास कम होता जा रहा है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में प्रथा का चित्रण हुआ है। उमानाथ को बैद्यनाथ की वर्षी पर ब्राह्मणों को भोज देने की बात चलती है। इसका चित्रण देखिए - ''ठीक दीपावली के दिन

बैद्यनाथ की वर्षी पडती थी। इस अवसर पर उमानाथ घर पर आता। कम से कम पाँच ब्राह्मण जिवाये जाते। प्रथा यह हैं कि पाँच वर्षों तक कम से कम ग्यारह व्यक्तियों को निमंत्रण दिया जाए। उसके बाद आप स्वतंत्र है।''[15] नागार्जुन ने यहाँ पर ब्राह्मणों को खाना खिलाने की प्रथा पर प्रकाश डाला है। नागार्जुन ने यहाँ पर 'बिकौआ प्रथा' का भी चित्रण किया है। ''बिकौआ उन्हें कहा जाता है, या जो अपनी कुलीनता बेचकर अपनी जीविका चलाते थे।''[16]

'नई पौध' (1953) में वत्स्य और काश्यप गोत्रों में ब्याह होने की परम्परा है इसको लेकर नागार्जुन कहते है, ''दिगो गोत्र तो बिलकुल ठीक है। हमारी बहन का गोत्र काश्यप पडता है .... इतना तो मुझे भी मालूम हैं कि वत्स्य और काश्यप गोत्रों में ब्याह होता है।''[17] यहाँ पर ब्याह के बारे में जो परम्पराएँ होती है उसे लेखक ने चित्रित किया है।

विवाह, श्राद्ध, ब्राह्मण भोज, बलि, दान, आदि प्रथाओं का प्रभाव है। साथ ही सामाजिकता से जुडी कई प्रथाएँ रही है। 'बिकौआ', 'हलवाई' जैसी प्रथाएँ आज भी है, जो दास्यप्रथा का प्रमाण है। उसे मानवता के नामपर धब्बा है। ऐसी प्रथाओं का विरोध होना अनिवार्य है, मगर न होना कमजोर मानसिकता का प्रतीक है।

5.2.2.3 मनौतियाँ :-

प्राचीन काल से ग्रामीण समाज पिछडा हुआ है। उनमें अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास कुट-कुट के भरा हुआ है। ग्रामीण समाज में विभिन्न स्तर के लोग रहते हैं। अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु वे अपने इष्ट देव से प्रार्थना करते है। इष्ट देव की प्रार्थना करने पर अपनी इच्छाएँ पूरी होती है ऐसी उनकी धारणा है। भारतीय समाज व्यवस्था में विभिन्न जाति-धर्म के लोग रहते हैं जैसे की हिन्दू, मुसलमान, ख्रिश्चन, सिक्ख, ईसाई आदि। हर व्यक्ति के मन में सुखद की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, सपने, संकल्प आदि रहते हैं। ये लोग अपनी-अपनी अपेक्षा पूरी होने के लिए अपने इष्ट देव के द्वार पर जाकर मनौतियाँ मानते हैं। मनोतियाँ मनाने का प्रचलन परम्परा से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता आया है।

भारतीय ग्रामों में रहनेवाले लोग अर्थाभाव के कारण अपने कार्य में सफल नहीं हो पाते, इसलिए वे भगवान के दरबार में मनौतियाँ मनाते हैं। जैसे की कुछ लोग खेती उत्पादन में बढत हो, पारिवारिक सुख, संतान की प्राप्ति, संकटों से मुक्ति, धन-संपत्ति की प्राप्ति के लिए लोग मनौतिया मनाते है। देहातों में तो कुछ लोग अपने दुश्मन का नाश होने के लिए भी मनौतियाँ मनाते है लेकिन

मेरे विचार से यह कुरीति है, ऐसा कहा तो अनुचित न होगा। इच्छित फल मिलने पर यह लोग मनौती अनुसार देवी-देवताओं की पूजा करते है, प्रसाद है, बलि, नारियल, मिष्टान्न चढाते है तथा सत्यनारायण की पूजा भी होती है। नागार्जुन ने अपने साहित्य में देहाती लोगों का मनौतियाँ मानने का चित्रण यथार्थता से किया है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में रत्ती के मित्रो ने चोरी हुई किताबे मिलने पर पाँच पैसे की मिठाई सरस्वती मैया को चढ़ाने की बात को नागार्जुन इस प्रकार चित्रित करते है, "अगले दिन अलमारी में गायब किताबे मौजूद थी। किताबे मिलने की खुशी में सत्तो, परमा, उत्तिम, नित्या और रत्ती - पाँचों साथियों ने मिलकर सरस्वती मैया को पाँच पैसे की मिठाई अगले इतवार को चढ़ाना मंजूर किया।"[18] यहाँ पर स्पष्ट है, कि बूढे, जवान ही नहीं तो बच्चें भी मनौतियाँ मानने में पिछे नहीं है। आज भी ग्रामीण संस्कृति इसपर टिकी है चाहे वह श्रद्धा हो या अंधश्रद्धा।

'नई पौध' (1953) में नागार्जुन ने देहाती लोगों की भिन्न-भिन्न प्रकार की मनौतियाँ होती है इसका चित्रण किया है। "पंडिताईन ने आँचल पसार कर और मत्था टेककर जोडा छागर कबूला था दुर्गामाई के आगे। बच्चन ने सत्यनारायण भगवान की पूजा का संकल्प लिया था। रामेसरी की मनउती थी गंगाजल भरकर पैदल पहुँचेगी और हाथों से बाबा बटेसरनाथ को नहलाएगी । कुछ मनउती बिससेरी की भी थी क्या ?

थी कि। अवश्य थी।

नहीं भला कुछ कैसे होती !

तो क्या थी बीसों की अपनी मनउती ?

बिसेसरी की मनउती यह थी कि आनेवाले अगहन में अगर कोई बीस या बाईस साल का दूल्हा उसके लिए मिल गया और शादी हो गई तो वह चाँदी की छोटी-सी खुबसूरत बसुली ! गढवाएगी सुनार से बाँके बिहारी कुँवर कन्हैया के हाथों में थमा देगी --- ।"[19] यहाँ पर अलग-अलग श्रेणि के लोगों द्वारा अपनी-अपनी मनौतियाँ मनाते की बात कहीं है।

'बाब बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुन ने ग्रामांचल में स्थित मनौतियों को उजागर किया है। यहाँ बाबा बटेसरनाथ कहते है, "किसी के घर कोई शुभ कार्य होता तो यहाँ आकर पाठक बाबा का पूजन आवश्य कर लेता। मनोरथ पूरा होने पर लोग आकर धूमधाम से मनौतियाँ चढ़ाते।"[20]

यहाँ पर लोग अपने घर शुभकार्य होने पर या फिर अपना मनोरथ पूरा होने पर मनौतियाँ चढाने की प्रथा को स्पष्ट किया है।

अत: यहाँ पर नागार्जुन ने देहाती लोगों के अज्ञान और धार्मिक अंधविश्वास के कारण लोग अपने इष्ट देव से मनौतियाँ मानते है और अपनी मनोकामना पूरी होने पर मनौति के अनुसार पूजा-अर्चा करते हैं इसे स्पष्ट किया है। देहातों में लोग गरीबी के कारण अभावग्रस्तता की परिस्थितियों से गुजरते है और अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी जिते है। देहाती लोगों की यह मनौतियाँ मानने की मानसिकता एक दुर्बलता का प्रतीक है ऐसा मुझे लगता है।

5.2.2.4 पूजा-अर्चा :-

ग्रामजीवन में धर्म के क्षेत्र में पूजा का अत्यंत महत्त्व है। देहातो में रहनेवाले लोग आज तक 'भगवान' को ही सबकुछ मानते आए है। अज्ञान और अंधविश्वास के कारण भगवान पर श्रद्धा रखते है। उनका मानना है सृष्टी का संचालन करनेवाला भगवान है। इसलिए वे परम्परागत धार्मिक रीति-रिवाजों प्रथाओं के अनुसार शुभ कार्य के प्रारंभ में देवी-देवताओं की पूजा करते है। देहाती लोग पत्थर, पेड, तालाब, पर्वत, नदी, गाय आदि की पूजा करते है। उनका मानना है कि अगर हम देवी-देवताओं की पूजा करके उन्हें प्रसन्न रखते है तो हम पर संकट नहीं आता। ग्रामीण लोग अपने-अपने धर्म, जाति के अनुसार देवी-देवताओं की पूजा करते है। इसका चित्रण नागार्जुन ने अपने साहित्य में किया है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में नागार्जुन ने ब्राह्मणों की पूजा-पाठ के बारे में सोचा है। जयनाथ एक ब्राह्मण है, ''जयनाथ को इस बात का अभिमान हैं कि वह एक ब्राह्मण है। पूजा-पाठ, गप-शप, सैर-सपाटा, बाबा बैद्यनाथ, बाबा विश्वनाथ, दुर्गा ताराकाली इनकी चर्चाओं के अतिरिक्त यदि और कोई वस्तु जयनाथ को प्रिय थी, वह थी विजया बनाम अह भवानी। ''[21] मौलवी नमाज करने में सतर्क होते है, वर्णन देखिए - ''देखो मौलवी लोग कही भी हो, गाडी पर चाहे नाव में, जल में, चाहे थल में, परंतु नमाज का समय जहाँ आया कि अँगोच्छा बिछाकर चट से घुँटने टेक देंगे।''[22] यहाँ पर मौलवी लोगों के नमाज के बारें में वास्तविकता स्पष्ट की है।

'बलचनमा' (1952) में पूजा-पाठ के बारे में सोचा है। बलचनमा खुद कहता है, ''जास्ती कुछ न समझने पर इतना तो में समझ ही गया कि गाँधी महात्मा के पूजा-पाठ का यही ढंग है। हमारे फूल बाबू भी मगन होकर भजन गा रहे थे।''[23] यहाँ पर बलचनमा गाँधीजी तथा फूलबाबू के

पूजा-पाठ के बारे में कहता है। बलचनमा राधा बाबू की सास के पूजा-पाठ के बारे में कहता है, "अम्माजी (राधा बाबू की सास) अपना बखत पूजा-पाठ और कथा-पुराण सुनने में बितातीं थी।"[24] यहाँ पर लेखक ने भारतीय संस्कृति में धार्मिकता में पूजा-पाठ का कितना महत्त्व है वह स्पष्ट किया है। भजन, पुराण, कथन-पठन भी पूजा के प्रतीक है।

'नई पौध' (1953) में बिसेसरी के नाना उसका ब्याह जल्द से जल्द संपन्न होने के लिए पूजा-पाठ करते है। "नाना स्वयं अपने हाथों 'कन्यादान' करेंगे, सो नहीं आये है और संध्याकालिन पूजा-पाठ से निबट रहे है। कुलदेवता के समक्ष मंगलगान आरंभ हो चुका है।"[25] दूर्गा पूजा के बारें में लिखा है - "दुर्गा-पूजा के दिन थे। कही से ढोल और पिपही की आवाज आ रही थी। बूलो अपने घर में भाई-भाभी के बडे पलंग पर टाँगे फैलाकर तिरछा लेटा था। पिपही पर ढोलिया क्या गा रहा है ? जिज्ञासा में बूलो की आँखें बडी-बडी हो गई मन में करंट को उसने कान की कटोरियों से छुआ दिया और सुनने लगा ---

काली कमलीवाले तुझको लाऽऽखो पर्नाम ।
लाखो पर्नाम ! लाऽऽखो पर्नाम ! तुझ को ऽऽ।"[26]

यहाँ पर देहाती लोगों की पूजापाठ की प्रवृत्ति को दिखाया गया है।

'बाबा बटेसरनाथ' (1954) में नागार्जुन इसका सारा लेखा-जोखा दिया है। बरगद बाबा जैकिसुन से कहता है, "तेरा परदादा शिवजी का भारी भक्त था। वह हर सोमवार को यहाँ से चलकर उस मंदिर तक पहुँचता। जीवन में दूसरी तरह के उलट-फेर उसे बरदाश्त थे, मगर हप्ते में एक रोज, और वह भी सोमवार को बाबा बालेश्वरनाथ पर लोटाभर जल ढारने के नियम में किसी प्रकार का व्यतिक्रम उसे सह्य नहीं था। सुना है छब्बीस वर्ष की आयु के पश्चात उसने यह संकल्प लिया था। और जीवनपर्यन्त इस पर डँटा रहा।"[27] यहाँ पर जैकिसुन के परदादा के असीम भक्ति तथा पूजा-पाठ के बारे में कहा है।

देहातों में आज भी 'भगवान' को ही सबकुछ मानने की प्रवृत्ति दिखाई पडती है। ग्रामीण लोग अज्ञान और अंधश्रद्धा के कारण देवी-देवताओं पर अगाध विश्वास रखते है। इसी श्रद्धा और विश्वास से वे भगवान को प्रसन्न करने के हेतु से विविध पूजा-अर्चा के प्रकारों का आयोजन करते है। ग्रामीण लोगों में आज भी देवी-देवताओं को पूजने की अंधश्रद्धा की प्रवृत्ति है। इस कर्मकाण्डों में वे अपना समय और पैसा बर्बाद कर रहे हैं।

ग्रामदेवता, गणेश, शिवजी, हनुमान, गाय, बाबा, महंत की परंपरागत ढंग से पूजा होती है। अब भजन, गुणकथन भी हो रहा है। यहाँ मनौतियाँ मनाने की प्रधान प्रवृत्ति है साथ-ही-साथ आत्मिक शांति का भाव महत्त्वपूर्ण है। आज के युग मे पढ़े-लिखे लोग भी पूजा-अर्चा की ओर मुढे है। अब उनकी भावनिकता आध्यात्मिकता की ओर आकर्षित हो रही है। आलोच्य उपन्यासों में परम्परागत पूजा की चर्चा है। नागार्जुन ने उस पर प्रकाश डालकर ग्रामीण संस्कृति का एक अनोखा अंग स्पष्ट किया है।

5.2.2.5 मंत्र-तंत्र :-

ग्रामीण समाज अज्ञानी और अंधविश्वासी होने के कारण मंत्र-तंत्र पर विश्वास रखता है। मंत्र-तंत्र के साथ जादू-टोना, भूत-पिशाच्च, ओझा, बाबा, महाराज आदि बातों पर श्रद्धा रखते है। ये ढोंगी बाबा देहाती भोले-भाले लोगों को फसाते है। उन्हे डराते है, धमकाते है। उन्हें फसाने के लिए चमत्कारों का प्रयोग भी करते है। भोली-भाली ग्रामीण जनता इन लोगों के बहकावे में आकर अपना समय तथा पैसा बरबाद करती है। नागार्जुन ने अपने साहित्य में ग्रामीण लोग मंत्र-तंत्र में किस प्रकार विश्वास रखते हैं इसका यथार्थ चित्रण किया है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में नागार्जुन देहातों में जो मंत्र-तंत्रों का खेल चलता है इसका चित्रण किया है। जैसे की ''स्वच्छ, सफेद, शांतिपुरी धोती पहने गौरी सामने आई, तब मंत्रोच्चार हुआ - ॐ अप्स ज्येष्ठे मासे शुक्ले पक्षें त्रयोदश्या तिर्थों निवृत्तारोगाया अस्या: श्री गौरी देव्या: स्वीऽऽपलि प्रसमनार्थ सांगसाऽयुध सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजनमहं करिश्याम - ।''[28] यहाँ पर गौरी पर मंत्र-तंत्र के माध्यम से पूजा संपन्न होती है।

''बाबा बटेसरनाथ' (1952) में नागार्जुन ने ग्रामों के लोग मंत्र-तंत्रों पर विश्वास करते है यह स्पष्ट किया है। इसका वर्णन देखिए फिर उनके ओठ हिलने लगे। बिना दाँतों के मुँह में आहिस्ते-आहिस्ते चलती फिरती जीभ बता रही थी कि तर्क-पंचानन कुछ मंत्र था स्लोक जैसी पंक्तियों का पारायण कर रहे है।''[29] यहाँ पर भी ग्रामीण जनता मंत्रों-तंत्रों पर विश्वास करती है यह दिखाया गया है।

हम कह सकते हैं कि हर एक सभ्यता तथा संस्कृतिवाले वर्गो में मंत्र-तंत्र अलग अलग होते है। देहाती लोग अज्ञान और अंधविश्वास की जंजीरों में जकडे होने के कारण मंत्र-तंत्रों पर विश्वास करते है। मंत्र-तंत्र में प्रयुक्त संस्कृत भ्रष्ट शब्दों का अर्थ ग्रामीण लोग न समझते न जानते, मगर

धार्मिक भय से मानते है। सामान्यत: बाबा, ओझा, गुरूद्वारा इसका प्रयोग होता है। धर्मान्धता, मतलबीपन के दर्शन वहाँ होते है। इसके मूल में अंधश्रद्धा का प्रभाव लक्षित होता है।

5.2.2.6 व्रत-उपवास : -

देवी-देवताओं पर ग्रामीण लोगों की श्रद्धा एवं विश्वास होता है। इसी श्रद्धा एवं विश्वास से देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए लोग व्रत-उपवास रखते है। ग्रामों में रहनेवाले ग्रामीण लोग धार्मिकता से परम्परागत और प्रचलित रीति-रिवाजों के अनुसार देवी-देवताओं की पूजा तो करते है और साथ ही अपनी मनोकामना पूर्ति हेतु व्रत-उपवास भी करते है। दिन में थोडा-सा भोज करते हैं, भगवान की पूजा करते हुए श्याम के वक्त उपवास छोडते है। कुछ दिन में कुछ भी न खाकर कडा से कडा उपवास करते है। मुसलमान लोग रोजा रखते है। रोजा के मास में ये लोग नमाज पठन, दान धर्म करते है। और अपने संकल्प पूरे होने के लिए भगवान के सामने प्रार्थना करते है। इससे भगवान की कृपा होती है, आत्मशांति प्राप्त होती है यही धारणा है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में रतिनाथ अपनी चाची से कहता है, "चाची तुम भी बहुत बदल गई हो। दिन-रात चर्खा चलाकर अपने लायक पैसा कमा लेती हो। तीस दिन में दस दिन तो तुम्हारे उपवास में चला जाता है। शरीर सुखकर काँटा हो गया है।" यहाँ पर रतिनाथ अपनी चाची को ज्यादा उपवास करने से शरीर पर बुरा असर हो रहा है इसकी सलाह देता है। गौरी की माँ भी प्रति मंगल को उपवास रखती है। देखिए - "गौरी की माँ का खाना बनाने में मन नहीं लग रहा था, लेकिन कल मंगल है। प्रति मंगल को उपवास रखती है।"[30]

अत: हम कह सकते हैं कि देहाती लोग अज्ञान और अंधश्रद्धा के कारण व्रत-उपवास, रोजा रखते है। लोग अपने संकल्प पूरे होने की आशा से उपवास करते हैं, व्रत रखते हैं लेकिन कौनसे भी कार्यपूर्ति के लिए मेहनत की आवश्यकता होती है, जो इनकी यह व्रत, उपवास करने की प्रवृत्ति दुर्बलता का प्रतीक है ऐसा मुझे लगता है। व्रत-उपवास से स्वास्थ्य खराब होना तथा शरीर के लिए हानिकारक है फिर भी हर एक आदमी इसी का शिकार है। अधिक मात्रा में स्त्रिया व्रत रखती है। यह एक विरासत बनी है। सामाजिक एकता के लिए यह एक अनिवार्य तत्त्व बना है।

5.2.2.7 मृतक संस्कार :-

भारतीय संस्कृति विभिन्न संस्कारों से सजी-धजी है। मृतक संस्कार उनमें एक है। मृत्यु के बाद हिन्दुओ में हिन्दू धर्म के अनुसार अग्निसंस्कार और मुसलमानों मुस्लिम धर्म के अनुसार दफन

आदि मृतक संस्कार धर्म-जाति के अनुसार होते हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार तीसरे दिन रक्षा-विसर्जन होता है। मृतक के लिए उसका प्रिय भोज चढाना तथा उस भोज को कौअे का छूना आदि विधियाँ होती है। दसवे दिन पिंडदान होता है। हिन्दू धर्म के अनुसार मृतक संस्कार में कौअे को महत्त्वपूर्ण स्थान है। कौअे का पिंड को छू जाना इसका मतलब यह होता है कि उस मृतक की आत्मा की मानव योनी से मुक्ति होना। कुछ तेहरवाँ भी करते है।

आज के आपाधापी जीवन में आधुनिकीकरण के कारण लोग इन मृतक संस्कार कीविधियों को ज्यादा वक्त नहीं दे पाते। अत: वे इन संस्कारों को तीन दिन में ही समाप्त करते है, और अपना निजी जीवनक्रम शुरू करते है। आज यह प्रथा शिक्षित तथा नागरीकरण के कारण से टूटती जा रही है। आधुनिक काल में 'इलेक्ट्रिक पद्धती' के उपकरणों द्वारा अग्निसंस्कार हो रहे है। आजकल तो जल प्रदुषण की वजह से मृतक संस्कार की अस्थियाँ और रक्षा जल में भी नहीं बहाई जाती है, तो उसे दफनाया जाता है। आज मनुष्य अपने प्राचीन सभ्यता, संस्कृति तथा संस्कारों को भूलता जा रहा है, लेकिन कुछ भी हो आज भी देहातों में भारतीय संस्कृति के 'सभी संस्कारों' को शुभ माना जाता है। अथवा उसका आचरण भी लोगों द्वारा हो रहा है। संस्कृति और संस्कारों का संबंध हमेशा रहा है जैसे कि इस संदर्भ में वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है - ''संस्कृति में कला, धर्म, दर्शन, संस्कार आदि से संबंधित मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है। इसलिए जीवन के विविध रूपों का समूह ही 'संस्कृति' को कहा जाता है।''[31] अत: हर एक संस्कार को संस्कृति में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

स्पष्ट है मृतक संस्कार परंपरागत है। दफन या दहन करने की प्रथा है। ग्रामों में मृतक संस्कार में पारिवारिक कर्तव्य मानकर उसे अपनाकर स्पष्ट किया है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में शुभंकरपूर गाँव में मृत्यु के बाद के संस्कार भी अनोखे है। रतिनाथ चाची के चिता की परिक्रमा करके मुँह में अग्नि का स्पर्श करता है। और यह विधि तीन बार होती है। फिर चिता जलाई जाती है, चिता जलाकर बची खुची दो हड्डियाँ रखके बाकी रक्षा समेटकर एक छोटा चबूतरा बना दिया जाता है। इसके ऊपर तुलसी का पौधा लगाकर हड्डियाँ गंगा में बहाई जाती है। एकादशाह को कच्ची रसोई का भोज और द्वादश को चुग-दही का भोज का रतिनाथ आयोजन करके मृतक संस्कार पूरा करता है।

अंत में हम कह सकते है कि भारतीय समाज व्यवस्था में शिक्षा तथा नागरीकरण की वजह से कितनी भी प्रगति एवं विकास क्यों न हो लेकिन ग्रामीण लोग आज अपने भारतीय 'संस्कृति' अथवा 'संस्कारों' को नहीं भूल पाये है और ना कभी भूलेंगे ऐसा मुझे लगता है।

यहाँ स्पष्ट है भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म और संस्कृति का महत्त्व रहा है। वास्तव में धर्म श्रद्धा का विषय है। यहाँ पर धर्म के व्यापक स्वरूप एवं महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। अंधविश्वास देहाती जन-जीवन में कूट-कूटकर भरा हुआ है जिसका कारण अज्ञान है। देहातों में रूढि, प्रथा - परम्पराओं का भी प्रचलन रहा है। जिसके कारण लोग अपना वक्त और पैसा बर्बाद कर रहे हैं। लोग अपने संकल्पपूर्ति के लिए मनौतियाँ, पूजा-पाठ, मंत्र-तंत्र, व्रत-उपवास आदि को अपना रहे हैं जो की उनकी यह प्रवृत्ति मानसिक दुर्बलता का प्रतीक है ऐसा लगता है। यहाँ पर लोग मृतक संस्कारों को भी महत्त्व देते है लेकिन नगरों में लोग समय की पाबंदी के कारण इसे कम महत्त्व देते है। इन लोगों पर नागरीकरण का प्रभाव है अत: नागार्जुन ने अपने साहित्य में ग्रामीण समाज व्यवस्था में 'धर्म' का महत्त्व स्पष्ट किया है।

5.3 सांस्कृतिक पक्ष :-

भारतीय समाज व्यवस्था में सांस्कृतिक पक्ष का अपना अनोखा स्थान है। समाज और संस्कृति का संबंध अन्योन्याश्रित रहा है। संस्कृति का आधार समाज है और समाज को नियंत्रित रखने का कार्य संस्कृति करती है। इस संदर्भ में डॉ. सत्यकेतू विद्यालंकार का कथन है, ''मनुष्य ने धर्म का जो विकास किया, दर्शनशास्त्र के रूप में जों चिंतन किया, साहित्य, संगीत और कला में जो सृजन किया, सामूहिक जीवन को हीतकर और सुखी बनाने के लिए जिन प्रथाओं और संस्थाओं को विकसित किया, उन सबका समावेश हम 'संस्कृति' में कर सकते है।''[32] अत: हम कह सकते हैं, कि मानवसमाज में धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक, साहित्यिक एवं कलात्मक क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण तत्व है प्राय: उसे 'संस्कृति' कहते है। 'संस्कृति' शब्द के संदर्भ में विद्वानों ने निम्न विचार प्रस्तुत किए है -

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति :-

बाबूराम गुप्त के मतानुसार, 'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा के 'सम'उपसर्ग-पूर्वक 'कृ' धातू से 'सुह' का आगम करके 'क्तिन' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है संबोधन करना, सुधारणा या परिष्कार करना।[33]

डॉ. नगेंद्र का मानना है - 'संस्कृति' मानव जीवन की वह आवश्यकता है जहाँ उनके प्राकृत राग द्वेशो का परिमार्जन हो जाता हैं।[34]

शंभूसिंह का कथन है - ''अंचल विशेष के प्राकृतिक सौंदर्य और उससे लिपटी हुई संस्कृति से संबंधित वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, धार्मिक मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, लोकगीत, नृत्य, भाषा, पर्व-त्यौहार सबका विवेचन उसी संस्कंति के अंतर्गत आता है।''[35]

अत: उपर्युक्त विवेचन से हमें संस्कृति का विस्तृत रूप नजर आता है। अत: अंग्रेजी में इसे 'कल्चर' शब्द प्रयुक्त हुआ है। सामान्यत: मानव जीवन के लिए हितकारी, सुसंस्कारी, प्रथा-परम्परा, मान्यता 'संस्कृति' है। संस्कृति मानव जगत कल्याण के लिए उपयुक्त है।

5.3.1 भारतीय समाज व्यवस्था में संस्कृति का महत्त्व :-

भारत संस्कृति-प्रधान देश है। समाज एवं संस्कृति का परस्पर संबंध रहा है। 'संस्कृति' का आधार 'समाज' है। साहित्य समाज का संवाहक है तो साहित्य तथा संस्कृति का सम्बन्ध भी बेजोड है। यह सच है किसी समाज का अध्ययन करना हो तो वहाँ की संस्कृति देखना अनिवार्य है। संस्कृति को परखने के लिए साहित्य का अध्ययन करना आवश्यक है। अत: साहित्य, समाज, संस्कृति का परस्पर संबंध रहा है। जब किसी युग अथवा स्थान के समाज की संस्कृति उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में समर्थ नहीं होती तब सांस्कृतिक विघटन की प्रक्रिया आरंभ होती है।

भारतीय संस्कृति के मूल स्त्रोत ग्राम-जीवन में ही है। भारत कृषि-प्रधान देश है अत: संस्कृति का सही प्रसार देहाती जीवन में होता है। गांधीजी का नारा था 'देहात की ओर चलो'। यह उनका कथन सही है । अत: 'ग्राम' ही हमारे संस्कृति के प्रतीक है, रक्षक है। नगरों की तुलना में आज भी ग्रामों में 'संस्कृति' सुरक्षित है। ग्रामों के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा, केश-भूषा, धार्मिक मान्यताएँ, रूढ़ियाँ, लोकगीत, नृत्य, पर्व-त्यौहार आदि संस्कृति के रक्षक और प्रमाण है। संस्कृति के महत्त्व के बारे में डॉ.मृत्युंजय उपाध्याय ने कहा है, ''मनुष्य के रूप में सामाजिक सदस्य के नाते उसके सारे क्रिया-व्यवहार एक सांस्कृतिक चक्र से बँधे हैं। संस्कृति वही आधार है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान, कला, नैतिकता, प्रथाएँ एवं परम्पराएँ सीखता है। संस्कृति एक सामाजिक विरासत है।''[36]

नागार्जुन के उपन्यासों का कथा क्षेत्र मिथिला अंचल होने से वहाँ के सांस्कृतिक उपादानों का यथार्थ चित्रण उपन्यासों में मिलता है। नागार्जुन ने गांधीवादी, समाजवादी दृष्टिकोण से ही नई ग्राम संस्कृति को प्रस्तुत किया है। साहित्य और संस्कृति के संबंध के बारे में डॉ. बी. डी. गुप्ता का कथन है, ''साहित्य संपूर्ण संस्कृति का एक अंश है। संस्कृति ही सामाजिक संरचना और निर्माणक

इकाइयों की प्रस्थिति एवं भूमिका को प्रमाणित कर उन्हें व्यवस्थित एवं भूमिका को प्रमाणित कर उन्हें व्यवस्थित एवं संतुलित रूप प्रदान करती है।''[37] अत: हम कह सकते हैं कि हमारी संस्कृति केवल जीवन के सुखों की अपेक्षा नहीं करती जो संसार में रहकर निर्लिप्त भाव से रहने का संदेश भी देती है। इसी महानता की वजह से पूरे संसार में सूर्य की भाँति प्रकाशमान है। अत: नागार्जुन संस्कृति के सुख-दु:ख के साथ पर्व-त्यौहार, मेले, लोकगीत, खेल-कुद, रीति-रिवाज आदि से जुडे होने के कारण उन्होंने ग्रामीण जीवन के सांस्कृतिक पक्ष का चित्रण हुबहूब किया है।

5.3.2 नागार्जुन के उपन्यासों में सांस्कृतिक पक्ष :-

5.3.2.1 रीति-रिवाज :-

भारतीय समाज व्यवस्था में रूढि, प्रथा-परम्परा, मृतक संस्कार, आदि हमारे भारतीय संस्कृति के तत्व है उस प्रकार 'रीति-रिवाज' भी एक है। भारतीय समाज व्यवस्था में अनेक जाति, धर्म, संप्रदाय के लोग रहते है अत: प्रत्येक समाज तथा संस्कृतिवाले वर्गों के रीति-रिवाज, प्रथा अपने-अपने होते है जो दूसरो से अपना अलग अस्तित्व रखते है। मिथिला के ग्रामीण लोग अपने पारंपारिक संस्कारों, रीति-रिवाजों में बडी आस्था रखते है। नागार्जुन ने अपने साहित्य में मिथिला के ग्रामों में रहनेवाले लोगों के रीति-रिवाजों का चित्रण किया है। भारतीय लोग अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास से रीति-रिवाजों का निर्वहन करते हैं। यह प्रवृत्ति परम्परागत रही है। स्थान, काल, परिस्थिति के प्रभाव के कारण रीति-रिवाजों के प्रभावित होने की स्थिति देहातों में दिखाई पडती है। रीति-रिवाजों का गहरा प्रभाव ग्रामीण समाज व्यवस्था पर पडा है। उनको निभाने के लिए कुछ विशेष व्यवस्था नहीं होती बल्कि वह अपने आप एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाती है।

ग्रामीण लोग रीति-रिवाजों का निर्वहन करने के लिए अनेक पीडाएँ उठाते है, पैसे खर्च करते हैं। वे कभी भी रीति-रिवाज को ठुकराने के बारें में सोचते नहीं है और अगर कोई ऐसा करता है तो लोग उसके खिलाप हो जाते है। उसे बहिष्कृत करते है अत: ग्रामीण लोग रीति-रिवाजों को मानना अपना धर्म समझते है।

'रतिनाथ की चाची' (1948) में नागार्जुन ने मिथिला के ग्रामों के लोगों के रीति-रिवाजों का चित्रण किया है। इस संदर्भ में एक दृष्टव्य - ''ठिक दीपावली के दिन बैद्यनाथ की वर्षी पडती थी। इस अवसर पर उमानाथ घर आता। कम से कम पाँच ब्राह्मण जिवाये जाते। किसी-किसी वर्ष यह संख्या सात और नौ तक पहुँच जाती।''[38] यहाँ पर जयनाथ के भाई बैद्यनाथ की मृत्यु हो जाने

के एक साल बाद उसके वर्षी के अवसर पर ब्राह्मणों को खाना खिलाने का रिवाज है इसका चित्रण हुआ है। सुखद-दु:खद की घटनाओं में प्रथाएँ है, सुख की अपेक्षा दु:ख से संबंधित रीति-रिवाजों को मानने की विचारधारा है।

'बलचनमा' (1952) में खुद बलचनमा अपने शादी में रीति-रिवाजों को निभाता है। वह कहता है - ''शादी के सिलसिले में मुझे तीन रोज माँ से और दादी से अलग रहना पडा क्योंकि जहाँ शादी तय हुई थी, वह गाँव हमारे गाँव के बारह कोस दच्छिन पडता था। बारात में हमारे तरफ लोग औरतों को नहीं ले जाते है। सुना है, पश्चिम में ऐसा रिवाज है।'' यहाँ पर देहातों में शादी के सिलसिले में जो रीति-रिवाजों का पालन किया जाता है, इसका चित्रण हुआ है।

'नई पौध' (1953) में पितरह पच्छ के बारे में यह रीति-रिवाज है। इसका चित्रण देखिए

''आसिन का महीना ।

पित्तरपच्छ के दिन आ गये थे।

आज मातृनवमी थी। अपनी-अपनी माँ, नानी, सास, दादी और परदादी के नियम सबको एक-एक ब्राह्मण चाहिये था। इतने ब्राह्मण कहा से आवे ?''[39] यहाँ पर पितरपच्छ के अवसर पर विधि पूर्ण करने के लिए ब्राह्मण की आवश्यकता होती अत: यह एक रीति-रिवाज ही है।

'बाबा बटेसरनाथ' में एक बटवृक्ष के माध्यम से रीति-रिवाजों का चित्रण किया है। बरगद बाबा कहते है, ''नरमुन्ड और आदमी लहू, यक्षों, देवों और ब्रह्मों के दबाव में आकर जाने कितनी बार हमारे पुरखों को स्वीकार करना पडा है। मुझे तो खैर, बकरों की बलि से छुटकारा मिल जाता था। हाय हमारे पूर्वजों को जाने कैसी-कैसी बीभत्स और रोमांचकारी परिस्थितियों से गुजरना पडा था।''[40] यहाँ पर बटवृक्ष के पेड को नरबलि, बकरियों का बलि देने का रिवाज देहातों में होने का संकेत मिलता है।

अत: हम कह सकते हैं कि भारतीय समाज व्यवस्था में अनेक जाति, धर्म, संप्रदाय के लोग रहते है लेकिन प्रत्येक सभ्यता तथा संस्कृतिवाले वर्गो के रीति-रिवाज के नियम भी अपने होते है जो दूसरों से अपना अस्तित्व अलग-अलग रखते है। अत: फिर भी हमारी भारतीय संस्कृति एक है। विवाह भोज, मृतक, उत्सव-पर्व में जो रीतियाँ रही है उसको सभी स्वीकृति देते है। चुपचाप पालन करते है। प्रथा रीति के पीछे धार्मिक भावना भी रही है। उसका विरोध करना पाप माना जाता है। कमजोर मानसिकता, डर की भावना इसके मूल में रही है ऐसा लगता है।

5.3.2.2 तीज-त्यौहार :-

भारतीय संस्कृति में तीज-त्यौहारों को विशेष महत्त्व है। भारत वर्ष में अनेक धर्म, जाति के लोग रहते है, अत: वे अपने धर्म और जाति के अनुसार त्यौहारों को मनाते है। देहातों में नववधू को ससुराल लाने के लिए दूल्हे के घर से पाँच-छ: लोग मिठाई, आभूषण, वस्त्र, फल ले जाते है, इसे 'तीज' कहते है। यह 'तीज' की सामग्री गाँव के लोगों में बडी श्रद्धा से बाँटी जाती है। इन तीज और त्यौहारों को मनाने के पीछे देहाती लोगों की धार्मिक भावना होती है। इस संदर्भ में महादेव जोशी लिखते है, "जिस धार्मिक समारोह में लोगों को हर्ष, आनंद और मन:प्रसाद की अनुभूति मिलती है, उसे उत्सव कहा जाता है।"[41]

भारत के ग्रामीण लोगों पर धर्म और संस्कृति का प्रभाव सदियों से रहा है ऐसा कहना गलत नहीं होगा। इसी कारण देहाती लोग अपने-अपने तीज-त्यौहारों को बडी धूमधाम से मनाते है। इसमें सब लोग अपना दु:ख-दर्द, पीडा, समस्या आदि भूलकर सामूहिकता, बंधुता, प्रेम, सद्‌भावना से त्यौहार मनाते है। अत: इसमें हमें 'समाज एकता' के दर्शन होते है।

'रतिनाथ की चाची' में नागार्जुन ने 'रक्षाबन्धन' के त्यौहार का जिक्र किया है। इस वर्णन को देखिए - 'रक्षाबन्धन के दिन राजाबहादुर की कलाई में पडितजी राखी बांधते है। विजयादशमी के दिन राजा बहादुर के सिर पर जो के मृदु मनोरम हरित-गौर अंकुर डाल आते है। पर्व-त्यौहार के दिन कभी पंडितजी अपने घर नहीं आते। ऐसे अवसरों के लिए राजा बहादुर के यहाँ आते।'[42] यहाँ पर 'रक्षाबन्धन' जैसे पवित्र त्यौहार का चित्रण हुआ है। तथा उत्सवो में ब्राह्मणभोज की प्रथा दिखाई है।

'बलचनमा' (1952) में नागार्जुन ने 'दुर्गा पूजा' त्यौहार का चित्रण किया है। बलचनमा खुद कहता है, "दुर्गा पूजा की छुट्टी बिहार बंगाल में बडी लम्बी होती है, जानते ही हो। शुरू क्वॉर से लेकर दीवाली ठेठ 'भाई दूज' तक स्कूल कॉलेज बन्द रहते हैं। लडको और मास्टरो और परफेसरों के लिए मौज है भैया। फूल बाबू दसहरा भर मलिकाईन के यहाँ रहे है।"[43] यहाँ पर बलचनमा दुर्गापूजा, भाईदूज, तथा दशहरा के त्यौहारों की बात करता है।

'नई पौध' में तीज, त्यौहार का वर्णन है। लेखक कहते है कि, 'तीज का त्यौहार किसी को अच्छा जाता है तो किसी को बुरा।' इसके संदर्भ में एक दृष्टव्य, "तीज का त्यौहार आया और पंडिताईन को रूलाकर गया।"[44] यहाँ पर स्पष्ट है कि त्यौहार तो खुशी का प्रतीक होते है परंतु कभी कभी त्यौहार मनाने में कुछ अडचणे भी देहाती लोगों को आती है।

'बाबा बटेसरनाथ' में भी बरगद बाबा कहते है, ''पाँच-पाँच जवान जेल के अन्दर बंद थे। देव-उठान (प्रबोधिनी एकादशी) का त्यौहार हार बडछाही फोक्त गुजरा।''[45] यहाँ पर देव-उठान के त्यौहार का जिक्र किया है।

अत: हम कह सकते है कि भारतीय संस्कृति में तीज-त्यौहार का विशेष महत्त्व है। भारत अनेक जातियों धर्मियों से बना है, अत: यहाँ के लोग अपने जाति, धर्म के नियमों के अनुसार तीज-त्यौहार मनाते है। तीज-त्यौहार का संबंध 'धर्म' से होने के कारण लोग इसे बडे धूमधाम से मनाते है यहीं भारतीय संस्कृति की विशेषता है। तीज-त्यौहार उत्सव का प्रतिक, खुशियों का पर्व होता है। सामाजिकता, भावुकता, धार्मिकता, एकता के दर्शन इसमें होते है। राष्ट्रीय एकात्मता के लिए ऐसे पर्वों का होना जरूरी है, परंतु इसमें हिंसा, सांप्रदायिकता आज न हो। आज ऐसे उत्सव राष्ट्रीय समस्या बन रहे है। इस पर भी सोचना होगा।

5.3.2.3 मेले :-

भारत ग्रामों से बना देश है। अत: ग्रामों में रहनेवाले गरीब किसान लोग अपने दु:ख दर्द भूलाने के लिए मेले का आयोजन करते हैं। मेले शुरू होने के साथ पाँच-छ: दिन तक गाँव तथा आसपास के गाँवों में धार्मिक तथा सांस्कृतिक माहोल बन जाता है। यही भारतीय ग्राम सभ्यता की विशेषता है। इन मेलों में बैलों की दौड, मूर्गों की लडाई, नौटंकी, गीत, नृत्य के कार्यक्रम रखे जाते है जिनका आनंद सभी ग्रामवासी बडे चस्के से लेते है। नागार्जुन ने अपने साहित्य में गांव में मनाए जानेवाले मेले का चित्रण यथार्थपूर्णता से किया है। देहाती लोग इन मेलों का आयोजन करते है अत: इसके पीछे इनकी धार्मिक भावना रही है।

आज आधुनिक काल में लोग शिक्षित हुए है तथा विज्ञान के क्षेत्र में बहुत सारे अनुसंधान हो रहे है परिणामस्वरूप उत्सव, पर्व, मेले आदि के संदर्भ में इनमें उदासिनता नजर आती है। हमारे प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता को यह लोग भूलने लगे है, यह एक चिंता की बात है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में कम-अधिक मात्रा में मेलों के आयोजन के बारें में सोचा है।

'नई पौध' (1953) में नागार्जुन ने मेलों के आयोजन के बारे में लिखा है, जैसा की ''अपनी इस चीज पर हाथ पडते ही मुखिया को कलकत्ते की याद आती थी। दो साल पहले माँ और स्त्री को साथ लेकर वह जगर्नाथ की जतरा कर आया था, लौटते समय दो रोज फलकतिया हवा खाई थी। यह चाकू वही डेढ़ रूपया में ली थी।''[46] यहाँ पर जगर्नाथ के मेले के बारे में चित्रण किया है। अत: ग्रामों के लोगों द्वारा मेलों का आयोजन करना भारतीय संस्कृति का ही एक भाग है।

5.3.2.4 खेल-कुद :-

प्राचीन काल से भारत देश में खेल-कूद के प्रति आकर्षण रहा है। कुश्ती, बैलों की दौड, मुर्गो की लढाई, गुल्ली-दण्डा, पानी मे तैरना, दौडना आदि खेल रहे है। वैश्विकरण, आधुनिकीकरण के कारण खेलों में बहुत से बदलाव आये है। नए-नए खेलों का आयोजन हो रहा है। हमारे खिलाडी विदेश में जाकर अपने खेलों का प्रदर्शन कर के देश का नाम रौशन कर रहे है। नागार्जुन ने भी अपने उपन्यासों में कुछ प्राचीन परंपरागत खेल-कूदों का चित्रण किया है।

'बलचनमा' (1952) में खेल-कूद को लेकर खुद बलचनमा कहता है, ''भैंस चराना मुझे पसन्द था। गाँव के बाहर मेरी ही उमर के जब और चरवाहे इकठ्ठे हाते तो हम अपना-अपना दुख-भूलकर खेलते। कभी कौंडी उछालते, कभी बकरी की सूखी मींगणियों से संतधरा खेलते, कभी कंकड़ों से कौबाढुट्टी, मोगल, पठान या बाघ-गोटी का खेल भी खेलते।''[47] यहाँ पर देहातों में जो प्राचीन खेल खेले जाते थे इसका चित्रण लेखक ने किया है। बलचनमा कहता है, ''खान बहादूर को कुश्ती लड़ाने का बड़ा शौक था। दो पहलवान तो उन्होंने खुद ही पाल रखे थे। उनका कहना था कि हाथियों के बदले पहनवान पालना चाहिए, सवारी का काम तो बग्धी टमटम से भी चला लिया जा सकता है - मगर अखाडे में जब दो पैतरबाज पट्ठे आपस में गुथते हैं फिर जो मजा देखने को मिलता है, वह भला हाथी पालने से क्या खाक मिलेगा।''[48] यहाँ स्पष्ट हैं कि खान बहादुर द्वारा 'कुश्ती' को अन्य खेलों की तुलना में महत्त्व दिया गया है।

यहाँ पर हम कह सकते हैं कि खेल-कुद भारतीय परपम्रा का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। 'कुश्ती' जैसे खेल में तो हमारे देश में पैंतरबाज खिलाडियों ने भारत का नाम विश्व में रोशन किया है। अत: हमारे देश में खेल कूद को विशेष महत्त्व रहा है। इसके लिए स्वतंत्र मंत्रालय, सरकारी सहाय्यता, सुविधा, नौकरी में आरक्षण, सम्मान, पुरस्कार भी दिए जाते है। लगता है खेलकूद सेहद के साथ-साथ आत्मसम्मान बढानेवाली व्यवस्था है।

5.3.2.5 लोकगीत :-

लोकगीत शब्द का अर्थ है लोकविषय 'गीत'। लोकगीत किसी भी देश की लोकसंस्कृति और लोकजीवन के वास्तविक परिचायक होते है। डॉ. रविंद्रकुमार इस संदर्भ में कहते है, ''लोकगीत लोकमानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दु:ख की ल्यात्मक अभिव्यक्ति होते है। लोककथा की भाँति ये भी लोककण्ठ की मौखिक परंपरा की धरोहर और लोकमानस की विधि चिंता-धाराओं

के कोश माने गए है।"[49] डॉ. उत्तमभाई पटेल का कथन है - "लोकगीत ग्रामीण जनता की भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोकगीत लोककंठ की मौखिक परम्परा की धरोहर है।"[50] अत: लोगों में प्रचलित गीतों को भी लोकगीत कहते है, वर्तमान काल में यही परिभाषा चली है। डॉ. विवेकी राय के मतानुसार, "लोकगीतों में प्राणों का स्पंदन होता है तथा उनका समूचा अंतर वैभवशील गीतों के रूप में प्रस्फुटित होता है। परम्परा के रूप में गाये जानेवाले ये लोकगीत जिनके रचियताओं का कोई परिचय नहीं होता है, कभी-कभी गायकों के व्यक्तित्व के साथ मिलकर एकाकार हो जाते है।"[51] यहाँ पर डॉ. विवेकी राय की परिभाषा लोकगीत के बारे में परिपूर्ण लगती है। धीरेन्द्र वर्मा का मानना है, "लोकगीतों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति मिलती है।"[52] यहाँ पर धीरेन्द्र वर्मा ने 'लोकाभिव्यक्ति' को महत्त्व दिया है।

नागार्जुन ने भी अपने उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के साथ-साथ वहाँ के लोकगीतों पर भी प्रकाश डाला है।

'बलचनमा' (1952) में नागार्जुन ने देहातों में प्रचलित लोकगीतों का चित्रण करते हुए कहा है कि देहाती लोग आम के नौर से हवा में फैलानेवाली सुगंध को लेकर लोकगीत गाते है -

"सखि हे मजरल आमक बाग ?
कहू -कहू चिकराए को इलिया,
झींगुर गावए फाग,
कन्त हमर परदेस बसइ छयि,
बिसरी राग अनुराग ।"[53]

यहाँ स्पष्ट हैं कि आम के नौर से हवा में सुगंध फैलती तथा कोयल की मधुर आवाज प्राकृतिक सुषमा आदि का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है। यहाँ पर आम के बाग का महत्त्व और गीत का माधुर्य दोनों का अनुपम मिलाप है।

यहाँ पर हम कह सकते हैं कि लोकगीतों के प्रयोग से नागार्जुन के उपन्यासों का माधुर्य बढ़ गया हैं और आँचलिकता में स्वाभाविकता आ गयी है। बोली, संस्कृति, रहन-सहन, वेशभूषा आदि का वास्तविक प्रतिबिम्ब नागार्जुन द्वारा लोकगीतों में हुआ है। कटाई के मौसम में गाए जानेवाले गीत, होली के त्यौहार में गाए जानेवाले गीत, राधा-कृष्ण, राम-सीता के बारे में गाए जाने वाले लोकगीत आदि के माध्यम से भारतीय संस्कृति की गहराई का पता चलता है। आज शिक्षा प्रसार के कारण लोकगीतों में टूटन-सी आ रही है ऐसा लगता है।

यहाँ पर स्पष्ट है कि भारतीय समाज व्यवस्था में 'सांस्कृतिक पक्ष' को विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिसके अंतर्गत रीति-रिवाज, तीज-त्यौहार, मेले, खेल-कुद, लोकगीत आदि का महत्त्व रहता है। भारत में अनेक जाति-धर्म के लोग रहते है। अत: प्रत्येक समाज तथा संस्कृतिवाले वर्गों के आधार पर प्रथा परंपरा होती है जो दूसरों से अपना अलग अस्तित्व रखती है। फिर भी हमारी भारतीय संस्कृति एक है, ऐसा कहना अनुचित न होगा। अत: लगता है नागार्जुन ने अपने साहित्य में ग्रामीण परिवेश का यथार्थता से चित्रण किया है। सामाजिक सांस्कृतिकता को गहराई से चित्रित किया है।

5.4 नागार्जुन के उपन्यासों में धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता :-

साहित्य का सम्बन्ध जीवन से रहा है। नागार्जुन जीवन और साहित्य में पीडित जन के पक्षधर रहे है, साथ-ही-साथ उन्होंने ग्रामीण जीवन में जो धार्मिकता एवं सांस्कृतिकता के दर्शन होते इसका चित्रण भी किया है। नागार्जुन की सबसे बडी विशेषता रही हैं कि वे ग्रामांचल से जुडे साहित्यकार, रचनाकार हैं। नागार्जुन को अन्धविश्वास, साम्प्रदायिकता एवं छुआछूत के प्रति घृणा है। पिछडे हुए लोगों में धार्मिक अंधविश्वासों एवं पाखण्डों के प्रति अरूचि है। पाखण्डी लोग धर्म के नाम पर गरीब, किसान को ठगते है तथा उनका शोषण करते है। लेखक ने अपने उपन्यासों में पाखण्डों व धार्मिक अन्धविश्वासों के प्रति अपना कडा रूख तथा विरोध प्रस्तुत किया है।

नागार्जुन ने भारतीय समाज व्यवस्था में स्थित 'धर्म' को महत्त्वपूर्ण माना है लेकिन ग्रामीण लोगों में अज्ञान और धर्मांधता की जो प्रवृत्ति है उसका विरोध किया है। धर्म के नाम पर समाज में जो स्थिति अंधविश्वास, रूढ़ि-प्रथा-परम्परा, मनौतियाँ, पूजा, मंत्र-तंत्र, व्रत-उपवास,मृतक संस्कार आदि जैसी मनोवृत्तियाँ देहाती लोगों के मन में कूट-कूटकर भरी हुई है इसे नागार्जुन 'मानसिक दुर्बलता का प्रतीक' मानते है। अत: इन देहाती लोगों की प्रवृत्तियों का चित्रण वे अपने उपन्यासों में करते है। वे मानते हैं कि शिक्षा प्रसार से ऐसी मान्यता समाप्त होती है।

भारतीय समाज व्यवस्था में संस्कृति का विशेष महत्त्व है। समाज और संस्कृति का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित रहा है। अत: नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश के सांस्कृतिक पक्ष का भी चित्रण किया है। 'ग्राम' हमारे भारतीय संस्कृति के प्रतीक है। आज भी ग्रामों में संस्कृति का स्थान पवित्र है। ग्रामों में रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, केशभूषा, तीज-त्यौहार, मेले, लोकगीत आदि संस्कृति के तत्त्व आज भी स्वीकृत है। यहाँ पर नागार्जुन के उपन्यासों का

कथाक्षेत्र मिथिला अंचल होने से वहाँ के सांस्कृतिक उपदानों का यथार्थ चित्रण उपन्यासों में मिलता है।

अत: हम कह सकते है कि भारतीय समाज व्यवस्था में अनेक जाति-धर्म के लोग रहते है लेकिन प्रत्येक समाज तथा संस्कृतिवाले वर्गो के नियम भी अपने होते है जो दूसरों से अपना अस्तित्व अलग-अलग रखते है। नागार्जुन ने इस ग्रामीण परिवेश के सभी धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष के बारिकियों को अपने 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि उपन्यासों में चित्रित किया है।

निष्कर्ष :-

पंचम अध्याय 'नागार्जुन के उपन्यासों में चित्रित ग्रामजीवन: धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भ में' 'रतिनाथ की चाची', 'बलचमना', 'नई पौध', 'बाबा बटेसरनाथ' आदि उपन्यासों में स्थित धार्मिक एवं सांस्कृतिक संदर्भो का चित्रण नागार्जुन ने यथार्थता से किया है।

भारतीय समाज व्यवस्था में धर्म और संस्कृति को महत्त्व है। अंधविश्वास ग्रामीण लोगों में कूट-कूट कर भरा हुआ इसका कारण उनका अज्ञान और अशिक्षा है। आज भी देहातों में रूढ़ि-प्रथा-परम्पराओं का प्रचलन चल रहा है। जिसके कारण यह भोली-भाली जनता अपना वक्त और पैसा बरबाद कर रही है। ग्रामीण लोग अपनी मनोंकामना या संकल्पपूर्ति के लिए मनौतियाँ मानना, भगवान की पूजा-अर्चा करना, मंत्र-तंत्र में विश्वास रखना, व्रत-उपवास करना, मृतक संस्कारों का मनाना आदि का प्रचलन है।

भारतीय समाज व्यवस्था में सांस्कृतिक पक्ष को भी महत्त्व रहा है। सांस्कृतिक पक्ष के अंतर्गत ग्रामीण लोग रीति-रिवाजों का पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरण कर रही है। अनेक धर्म-जाति के लोग अपने-अपने नियमों के अनुसार तीज-त्यौहार, मेले, उत्सव धूमधाम से मनाते है। अत: इसके पीछे उनकी धार्मिक भावना ही रहती है। प्राचीन काल से भारत में खेलकुद का भी महत्त्व रहा है। लोकगीत किसी भी देश की लोकसंस्कृति और लोकजीवन के वास्तविक परिचायक होते है जिसके कारण ग्रामों में आज भी लोकगीतों को महत्त्व है। लोकगीतों के माध्यम से आज भी हमें भारतीय संस्कृति की गहराई का पता चलता है।

साहित्य और जीवन का सम्बन्ध चोली-दामन का है। नागार्जुन जीवन और साहित्य दोनों पक्षों को समान्तर रूप से देखते है। अत: उन्होंने ग्रामीण-जीवन के साथ-साथ ग्रामीण लोगों में जो धार्मिक एवं सांस्कृतिक पक्ष की झाँकी है इसे भी अपने उपन्यासों में उजागर करने का सच्चा प्रयास किया है ऐसा लगता है। ग्राम संस्कृति का अध्ययन करते समय नागार्जुन के उपन्यासों का अध्ययन करना अनिवार्य लगता है। ग्राम संस्कृति के हर एक तत्त्व को प्रस्तुत करने के लिए ग्रामीण जन संस्कृति पर प्रकाश डाला है। लगता है नागार्जुन के उपन्यास ग्राम संस्कृति की पहचान है।

संदर्भ सूची

1. संपा. रामचंद्र पाठक - 'भार्गव आदर्श हिन्दी कोश', प्र. सं. 1969, पृ. 391.
2. डॉ. शीलप्रभा वर्मा - 'महिला उपन्यासकारों की रचनओं में बदलते सामाजिक संदर्भ', प्र.सं. 1987, विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, पृ. 177.
3. डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास और ग्रामचेतना', अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 96.
4. लक्ष्मणशास्त्री जोशी - 'मराठी विश्वकोश', खण्ड 8 वाँ, (महाराष्ट्र साहित्य संस्कृति मणडल), मुंबई, प्र. सं. 1979, पृ. 7.
5. डॉ. एन. एस. शर्मा - 'भारत में संस्कृति एवं धर्म', प्र. सं. 1960, पृ. 232.
6. रामधारी सिंह दिनकर (से उद्‌धृत) - 'संस्कृति के चार अध्याय', प्र. सं. 1938, पृ.563.
7. डॉ. सुभद्रा पैठणकर - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी काव्य : युगीन संदर्भ', विद्याविहार प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1998, पृ. 216.
8. डॉ. विरेन्द्रसिंह - 'शब्दार्थो के गवाह', विवेक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, प्र.सं. 1986, पृ.57.
9. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 35.
10. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ.8.
11. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ. 39.
12. डॉ. सुरेन्द्र प्रताप यादव - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजावदी चेतना', भावना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. सं. 1992, पृ.66.
13. विलियम ग्राहम समनर - 'फोकेज', बोस्टन, गिलिन कंपनी, प्र. सं. 1938, पृ.13.
14. डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा - 'मृगनयनी', मयुर प्रकाशन, झाँसी, प्र. सं. 1950, पृ.200.
15. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 20.
16. वही, पृ. 20.
17. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 103.
18. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 51.
19. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 91.

20. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ. 58.

21. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 32.

22. वही, पृ. 32.

23. नागार्जुन - 'बलचनमा', किताब महल, इलाहाबाद, प्र. सं. 1952, पृ.100.

24. वही, पृ. 131.

25. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 37.

26. वही, पृ. 124.

27. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ. 63.

28. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 59.

29. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ. 29.

30. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 98.

31. वासुदेवशरण अग्रवाल - 'कला और संस्कृति', साहित्य भवन, इलहाबाद, प्र. सं. 1955, पृ.1.

32. डॉ. सत्यकेतू विद्यालंकर - 'भारतीय संस्कृति और उसका इतिहास, द्वि.सं.1936, पृ.19.

33. बाबूराम गुप्त - 'उपन्यासकार नागार्जुन, श्याम प्रकाशन, जयपुर, प्र. सं. 1986, पृ. 110.

34. डॉ. नगेंद्र - 'साकेत एक अध्ययन', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दरियागंज, दिल्ली, प्र. सं. 1980, पृ. 100.

35. शंभूसिंह - 'राघेय-राघव और आँचलिक उपन्यास', सुशिल प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं. 1979, पृ. 19.

36. डॉ. मृत्यूंजय उपाध्याय - 'हिन्दी के आँचलिक उपन्यास', चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1989, पृ. 94.

37. डॉ. बी. डी. गुप्ता - 'साहित्य समाजशास्त्रीय समीक्षा', सीता प्रकाशन, हथरस, प्र. सं.1946, पृ. 128.

38. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 77.

39. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 102.

40. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र. सं. 1954, पृ. 60.

41. महोदव जोशी - 'मुलांचा संस्कृति कोश', प्रथम खंड, भारतीय संस्कृत कोश मण्डल, पुणे, पृ.185.

42. नागार्जुन - 'रतिनाथ की चाची', किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.1948, पृ. 73.

43. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ. 41.

44. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 34.

45. नागार्जुन - 'बाबा बटेसरनाथ',पृ.112.

46. नागार्जुन - 'नई पौध' पृ. 107.

47. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ. 11.

48. वही, पृ. 83.

49. डॉ. रविन्द्र भ्रमर - 'हिन्दी भक्ति साहित्य मे लोकतत्व', भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली, पृ. 6.

50. डॉ. उत्तमभाई पटेल - 'आँचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन', क्वालिटी बुक पब्लिशर्स अॅण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, कानपुर, प्र. सं. 1999, पृ. 53.

51. डॉ. विवेकी राय - 'स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा-साहित्य और ग्रामजीवन', लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं. 1974, पृ. 276.

52. डॉ.धीरेन्द्र वर्मा - 'हिन्दी साहित्यकोश' भाग - 1, ज्ञानमंडल लि. वाराणसी, द्वि. सं. 2002, पृ. 750.

53. नागार्जुन - 'बलचनमा', पृ. 72.

-----x-----